सत्त्वमौपपादुकम्

प्रो. बनवारी लाल गौड
पूर्व-कुलपति
डा.एस.आर.राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय,जोधपुर

सुश्रुत के मतानुसार अव्यक्त से सर्ग (सृष्टि, उत्पत्ति) होता है,जो एक के बाद एक अपने पूर्ववर्ती तत्त्व से उत्पन्न होता है। चतुर्विंशति तत्त्वों के संयोगस्वरूपक समूह से जब पुरुष (आत्मा) संयुक्त होता है, तो इस में चैतन्य प्रकट होता है। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि गर्भ में यह चैतन्य कब प्रकट होता है।आधुनिक वैज्ञानिकों का मानना है कि गर्भ में चैतन्य की उत्पत्ति 40 से 48 दिन में होती है। इस सम्बन्ध में आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से पुनः अनुसन्धान अपेक्षित है,क्योंकि आचार्य सुश्रुत का यह मानना है कि शुक्र-शोणितसंयोग के साथ ही दैवसंयोग (पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्म के संयोग) के कारण सत्त्वादि अनेक भावों से अभिप्रेरित होता हुआ वह क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) गर्भाशय में प्रविष्ट हो कर अवस्थित हो जाता है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है, कि शुक्र-शोणितसंयोग के साथ ही जीवात्मा गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाता है, जीवात्मा के इस प्रवेश में दैवसंयोग को प्रमुख हेतु माना है। इस से यह भी संकेतित है, कि सूक्ष्मशरीर शुक्र-शोणितसंयोग के साथ ही गर्भाशय में प्रविष्ट हो कर संस्थित हो जाता है।क्योंकि शुभाशुभ कर्मस्वरूपक दैव उसी सूक्ष्मशरीर में सुरक्षित रहता है।

चरकसंहिता के शारीरस्थान के द्वितीय अध्याय में आचार्य चरक का संकेत भी इसी ओर है, आचार्य स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि-

भूतैश्चतुर्भिः सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहात् ।
कर्मात्मकत्वान्न तु तस्य दृश्यं दिव्यं विना दर्शनमस्ति रूपम् ।।[1]

अर्थात् वह (आत्मा) कर्म के अनुसार अत्यन्त सूक्ष्म चारों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु) भूतों के साथ मन के संयोग से (आत्मा) मृतदेह से नूतन देह में जाता है। दिव्यदृष्टि के बिना उस (आत्मा) का रूप दृष्टिगोचर नहीं होता।

चक्रपाणि इसे स्पष्ट करते हुये कहते हैं -

मनसा जवते गच्छतीति मनोजवः। एतेन चात्मनो व्यापकस्य यद्यपि देहान्तरगतिर्नास्ति, तथाऽप्यस्य मनोगतिरेव भूतसहिता गतिशब्देनोच्यत इति दर्शितं भवति। देहादिति म्रियमाणदेहात्। देहमिति उत्पद्यमानदेहम्। कर्मात्मकत्वादिति कर्माधीनत्वात्। तेन, कर्म धर्माधर्मरूपं यत्रैनं भोगार्थं नयति, तदेव देहमयं यातीत्युक्तं भवति।[2]

अर्थात् 'सुसूक्ष्मैः' इस वचन से अतीन्द्रियता को प्रदर्शित करते हैं। यहाँ अक्रिय (निष्क्रिय) होने से दूसरे शरीर में गमनकर्म में आकाश का कथन नहीं किया गया है। 'मनोजवः' का तात्पर्य है - मनसा जवते गच्छति इति (जो मनस् से जाता है, वह 'मनोजवः' होता है)। और इससे व्यापक आत्मा का यद्यपि दूसरे देह में गमन नहीं होता, तथापि इसकी भूतसहित मनोगति (मनस् की गति) का ही गति शब्द द्वारा कथन किया जाता है। 'देहाद्' इसका अभिप्राय है - 'मरते हुए शरीर से'। 'देहम्' इसका तात्पर्य है - 'उत्पन्न होते हुए शरीर में'। 'कर्मात्मकत्वात्' अर्थात् 'कर्माधीन होने से'। इससे धर्म-अधर्म रूप कर्म जहाँ इस (आत्मा) को भोग के लिए ले जाता है, यह (आत्मा) उसी देह को प्राप्त करता है। यह कथित होता है।

व्याख्याकार चक्रपाणि इसे स्पष्ट करते हुये महर्षि के वचनानुसार कहते हैं -

मरते हुए पुरुष से जाता हुआ यह (आत्मा) क्यों नहीं देखा जा सकता, यह बताते हैं कि--- आतिवाहिक (सूक्ष्मशरीर) युक्त इस आत्मा का रूप अतिसूक्ष्म होने से दृश्य (देखे जाने योग्य) नहीं है, यह भाव है। अब क्या सभी (लोग) गमन करते हुए इस आत्मा को नहीं देख सकते हैं, यहाँ कहते हैं - दिव्यं विना दर्शनमिति।

इस के आगे भी आचार्य चरक विषय को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

वह (आत्मा) सर्वग (सभी जड़-चेतन शरीर में गमन करने वाला) है, वह (आत्मा) सभी शरीरों का धारण-पोषण करने वाला तथा वह (आत्मा) विश्वकर्मा (सम्पूर्ण संसार उसी का कार्य) है, वह व्यापक रूपवाला है, वह ही चेतना धातुरूप है, और अतीन्द्रिय है, और वह नित्ययुक् (मन आदि ज्ञानेन्द्रियों से सदैव युक्त रहता) है। वह ही अनुशय (राग, द्वेष आदि से युक्त) है।।[3]

महर्षि चरक और महर्षि सुश्रुत के वचनों से यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है, कि गर्भ में आत्मा का प्रवेश शुक्र-शोणित के संयोग के समय ही हो जाता है। लेकिन उस आत्मा के प्रवेश की प्रक्रिया को दिव्य चक्षु के विना नहीं देखा जा सकता है (दिव्यं विना दर्शनमस्ति रूपम् -चरक)। प्राचीन काल में दिव्य चक्षुओं की स्थिति योगियों में होती थी। वर्तमान काल में इस तरह के उपकरण एवं प्रक्रियायें आविष्कृत हो चुकी हैं, कि इस सम्बन्ध में अनुसन्धानात्मक प्रक्रिया प्रारम्भ की जा सकती है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूक्ष्मशरीर या आतिवाहिक शरीर शुक्र-शोणितसंयोग के साथ ही गर्भाशय में प्रविष्ट हो कर संस्थित हो जाता है। गर्भोत्पत्ति-प्रक्रिया में यह जान लेना परमावश्यक है कि सूक्ष्मशरीर या आतिवाहिक शरीर क्या है?

वस्तुतः ये दर्शनानुमत पारिभाषिक संज्ञायें हैं, जिन में दार्शनिकों ने आध्यात्मिक दृष्टि से सूक्ष्मशरीर या आतिवाहिक शरीर को परिभाषित किया है। इस क्रम में सब से पहले सांख्यकारिका में निर्दिष्ट एतद्विषयक विचारों को उल्लिखित करना अपेक्षित है, यथा--

पूर्वोत्पन्नमसक्तं नियतं महदादिसूक्ष्मपर्यन्तम् ।

संसरति निरुपभोगं भावैरधिवासितं लिङ्गम् ।।[4]

इस का तात्पर्य यह है कि पूर्वोत्पन्न अर्थात् सर्ग (सृष्टि की उत्पत्ति) के पहले प्रकृति के द्वारा प्रति पुरुष(जीवात्मा) के साथ एक एक के लिये (सूक्ष्म शरीर) उत्पादित है असक्त अर्थात् जिस की गति बाधित नहीं है (जो कहीं भी किसी के साथ भी जुड़ सकता है) तथा नियत (निश्चित) है अर्थात् सृष्टि से ले कर महाप्रलय तक जिसका क्रम चलता रहता है (जो स्थायी है) एवं महद् से ले कर सूक्ष्मपर्यन्त (महान्,अहङ्कार,एकादश इन्द्रियाँ,पाँच तन्मात्रायें =18 तत्त्व) इन का समुदाय ही सूक्ष्मशरीर है, यह निरुपभोग है (उपभोग करने वाला नहीं होता, स्थूलशरीररहित है), धर्म-अधर्म आदि भावों (धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, वैराग्य-अवैराग्य,ऐश्वर्य-अनैश्वर्य= 8 भावों) से अधिवासित है (उनके प्रभाव से प्रभावित है) तथा लयशील है ऐसा यह सूक्ष्मशरीर (महदादि 18 तत्त्वमय सूक्ष्मशरीर) संसरण करता है अर्थात् स्थूल शरीर को धारण करता है (संसार में जन्म लेता है)और छोड़ता है,(जन्म-मृत्यु के माध्यम से गमनागमन की प्रक्रिया में संलग्न रहता है)। (वेदान्त में लिङ्ग सूक्ष्मशरीर को ही माना है, वे इस में 17 तत्त्व ही मानते हैं, अहङ्कार की गणना इस में नहीं करते)।

आचार्य चरक ने इसी तरह के भावों को अभिव्यक्त करते हुए ही 'भूतैश्चतुर्भिः' से इसी आशय को स्पष्ट किया है। इससे आगे आचार्य चरक 'रूपाद्धि रूपप्रभवः प्रसिद्धः' में जो कुछ कहते हैं, उसे स्पष्ट करते हुए चक्रपाणि कहते हैं, कि 'यहाँ रूप (रूपम्) भौतिक शरीर है, जो अभौतिक शरीर से अर्थात् आतिवाहिक या सूक्ष्म शरीर से (रूपात्) उत्पन्न होता है।'

सांख्यकारिका में इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा गया है-

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम् ।

गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः ।।[5]

अर्थात् इसलिये उस के (चैतन्य आत्मा के) संयोग से यह अचेतन लिङ्ग (महदादि 18 तत्त्वों वाला सूक्ष्मशरीर) चेतनावान् की तरह होता है,इस के साथ ही गुणों(सत्त्वादि गुणों, मन)में कर्तृत्व होते हुए भी उदासीन (आत्मा) कर्ता की तरह प्रतीत होता है।।

चरकसंहिता में इस विषय को और भी अधिक स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है, यथा-

अचेतनं क्रियावच्च मनश्चेतयिता परः।

युक्तस्य मनसा तस्य निर्दिश्यन्ते विभोः क्रियाः।।

चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्ता निरुच्यते।

अचेतनत्वाच्च मनः क्रियावदपि नोच्यते।।[6]

अर्थात् पर आत्मा चेतयिता (चेतना देने वाला है) किन्तु साक्षात् रूप से क्रियावान् नहीं है, मन से संयुक्त उस विभु की (सर्व व्यापक आत्मा की, जो कि स्थूल शरीर में आबद्ध है, उसकी) क्रियायें कही जाती हैं। क्योंकि आत्मा चेतनावान् है, अतः उसे कर्ता कहा जाता हैं (जबकि वास्तव में उस में कर्तृत्व है ही नहीं),मन अचेतन है अतः क्रियावान् होते हुये भी अचेतन होने के कारण उसे कर्ता नहीं कहा जाता है।

यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि कुछ विद्वान् लिङ्गशरीर एवं सूक्ष्मशरीर को एक ही मानते हैं, पर सांख्य ऐसा नहीं मानते हैं। लिङ्ग निरुपभोग है,इसे जब तक अधिष्ठान नहीं मिलता तब तक यह भोग नहीं कर सकता। यह लिङ्ग सूक्ष्मशरीर नहीं है पर सूक्ष्मशरीराश्रित है तथा ब्रह्माण्ड में रहने के कारण बाह्यशरीर से भी संयुक्त है 'महदादेः

सूक्ष्मशरीराश्रितस्य लिङ्गस्य यथासंस्कारं बाह्यशरीरेण सम्बन्धः' यह पहले सूक्ष्मशरीर के साथ संयुक्त होता है, उसके बाद उसके साथ ही स्थूल शरीर के साथ संयुक्त हो कर भोग करता है, इसीलिये दार्शनिक लोग स्थूल शरीर को लिङ्गायतन भी कहते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि लिङ्गशरीर और सूक्ष्मशरीर दोनों पृथक् पृथक् हैं।लेकिन ये एक दूसरे से इतने अधिक जुड़े हुये हैं, कि इन में अन्तर करना मुश्किल हो जाता है।केवल भोगकालीन स्थिति ही इनके अन्तर का एकमात्र आधार है अन्यथा इनमें कोई भेद नहीं है। वेदान्त में लिङ्ग सूक्ष्मशरीर को ही माना है ।

इसके अतिरिक्त दार्शनिकों ने एक आतिवाहिक शरीर का स्वरूप भी निर्दिष्ट किया है, यह एक विशेष स्थिति है जिसमें स्थूलशरीर के त्याग (मरण) एवं भोगदेह की प्राप्ति के बीच के समय में जीव आतिवाहिक शरीर के रूप में स्थित रहता है। इस काल में यह आतिवाहिक शरीर पूर्व में स्थूल शरीर के द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों के फल को स्वर्ग-नरक के रूप में भोगता है। भोग की अवधि पूर्ण होने के बाद यह पुनः स्थूल शरीर के ग्रहण के प्रति उन्मुख हो जाता है।

आयुर्वेदज्ञ महर्षियों ने आत्मा एवं मनःसम्बन्धी विवरण विस्तृत रूप से तर्कसहित प्रस्तुत किया है, जिसमें अनेक प्रचलित दर्शनों के विचार भी ऊहापोहपूर्वक समुचित विश्लेषण के बाद समाहित हैं। चरकसंहिता में गर्भोत्पत्ति की प्रक्रिया में एक अत्यन्त ही उलझा हुआ प्रसंग है, जिसमें गर्भ को मातृज, पितृज, आत्मज, सात्म्यज एवं रसज स्वरूप में समुदायात्मककारणत्व से समुत्पन्न माना है। साथ ही मन का औपपादुक (आत्मा का दूसरे शरीर से सम्बन्ध कराने वाला) माना है।

इस क्रम में आचार्य चरक का वह प्रसङ्ग उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने गर्भ में मनस् के संयोग या अभिसम्बन्ध(सम्पर्क) की प्रक्रिया को दार्शनिक भावों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं कि --

अस्ति खलुसत्त्वमौपपादुकं। यज्जीवं स्पृक्शरीरेणाभिसंबध्नाति, यस्मिन्नपगमनपुरस्कृते शीलमस्य व्यावर्तते, भक्तिर्विपर्यस्यते, सर्वेन्द्रियाण्युपतप्यन्ते, बलं हीयते, व्याधय आप्याय्यन्ते, यस्माद्धीनः प्राणाञ् जहाति, यदिन्द्रियाणामभिग्राहकं च 'मन' इत्यभिधीयते ।[7]

अर्थात् मन निश्चितरूपेण औपपादुक (आत्मा का अथवा स्वयं का दूसरे शरीर से सम्बन्ध कराने वाला) है, जो जीव को स्पृक् (आत्मा से सम्पृक्त) शरीर से संबद्ध करता है। जिसके अन्य शरीर में गमनोन्मुख होने पर इसका स्वभाव परिवर्तित हो जाता है। भक्ति (निष्ठा, स्नेह) में वैपरीत्य उत्पन्न होता है, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उपतप्त होती हैं, बल

क्षीण होता है। व्याधियाँ बढ़ जाती हैं, जिससे (मन से) रहित हो जाने पर वह प्राणी प्राणों को छोड़ देता है। और जो सभी इन्द्रियों का अभिग्राहक अपने अपने विषयों को ग्रहण कराने के लिए (अभिप्रेरक) है, इसे मन कहते हैं, यह तीन प्रकार का कहा जाता है -

शुद्ध, राजस व तामस। निस्सन्देह इन तीनों में से जिससे मन का अधिकतम संपर्क रहता है, उसी से द्वितीय जन्म में भी सम्बन्ध बना रहता है, जब तो यह मन उसी शुद्ध से ही (द्वितीय जन्म में भी) संयोग करता है तब वह जन्म के अतिक्रमण हो जाने पर भी उसका पूर्व जन्म में जिस योनि में रहा होता है, उसका स्मरण करने में सक्षम होता है। निस्सन्देह स्मरणजन्य ज्ञान का अनुवर्तन (वैसा ही ज्ञान होना) उसी आत्मा का, उसी मन से द्वितीय जन्म में संयोग होने से होता है। इसी अनुवृत्ति के कारण जातिस्मर(जिसको पूर्वजन्म की बातें याद रहती हैं) यह कहा जाता है।[8]

इसका तात्पर्य यह है कि यह औपपादुकत्व मनःसहित आत्मा का स्वरूप है। महर्षि चरक के उपर्युक्त वचनों की व्याख्या करते हुये व्याख्याकार चक्रपाणि इसे सरलीकृत रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -

अस्ति इत्यादि कथन के द्वारा मन की आक्षिप्त औपपादुकता (मन या आत्मा का दूसरे शरीर से सम्बन्ध कराने के भाव) का समाधान करते हुये आचार्य चरक कहते हैं कि -'यज्जीवं स्पृक्शरीरेणाभिसम्बध्नाति' इत्यादि।अर्थात् जीव नित्य आत्मा का स्पर्श करता है, अतः 'स्पृक्' है, 'शरीरम्' अर्थात् आतिवाहिक शरीर (सूक्ष्मशरीर), उस कारणभूत स्पृक्शरीर (सूक्ष्मशरीर) से आत्मरूप जीव भोगायतन शरीर(स्थूलशरीर) से जुड़ जाता है (अभिसम्बद्ध हो जाता है)। और आतिवाहिक शरीर की सत्ता 'भूतैश्चतुभिः सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहात्'[9] अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म चार महाभूतों पृथिवी, जल, तेज (अग्नि) और वायु के साथ वह मनोजव (आत्मा) एक देह से दूसरे देह में (स्वकर्मानुसार) गमन करता है, इस कथन से प्रतिपादित होती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है, कि यद्यपि सत्त्व (मन) को साक्षात् गर्भ का जनक (उत्पादक) नहीं कहा गया है, तथापि मन का जो उपपादुकत्व (स्वयं का एवं आत्मा का दूसरे शरीर में सम्बन्ध कराने वाला) गर्भ के प्रति है, उससे ही सत्त्व (मन) गर्भजनक प्रतिज्ञात (उद्घोषित) मानना चाहिए। मन का एक देह से दूसरे देह में गमनस्वरूपक जो धर्म है वह भी गर्भोत्पत्ति में अतिरिक्त कारण है।

इसी प्रसङ्ग में चरकोक्त आत्मज प्रसङ्ग का भी यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है, क्योंकि आत्मज भावों की उत्पत्ति के क्रम में ही जीव (चैतन्य) की गर्भ से सम्पृक्तता को भी आचार्य ने स्पष्ट कर दिया है,यथा-

आत्मजश्चायं गर्भः। गर्भात्मा ह्यन्तरात्मा यः, 'तं' 'जीव' इत्याचक्षते ..... तस्मान्न जात एवायमजातं गर्भं जनयति, अजातो ह्ययमजातं गर्भं जनयति। स चैव गर्भः कालान्तरेण बालयुवस्थविरभावान् प्राप्नोति, स यस्यां यस्यामवस्थायां वर्तते तस्यां तस्यां जातो भवति, या त्वस्य पुरस्कृता तस्यां जनिष्यमाणश्च, तस्मात् स एव जातश्चाजातश्च युगपद् भवति। यस्मिँश्चैतदुभयं सम्भवति जातत्वं जनिष्यमाणत्वं च स जातो जन्यते, स चैवानागतेष्ववस्थान्तरेष्वजातो जनयत्यात्मनाऽऽत्मानम्।[10]

अर्थात् यह गर्भ आत्मज है (आत्मा से उत्पन्न होता है)। क्योंकि जो गर्भ की आत्मा है वही अन्तरात्मा है, उस को 'जीव' कहते हैं, यह शाश्वत, रोगरहित (अरुक्), अजर, अमर, क्षयरहित, अभेद्य, अच्छेद्य, अलोड्य (क्षोभरहित), विश्वस्वरूप, विश्वकर्मा , अव्यक्त, अनादि, अनिधन (नाशरहित) व अक्षर भी है। वह गर्भाशय में प्रविष्ट होकर शुक्र व शोणित के संयोग में संयुक्त होकर गर्भत्व से अपने आप से अपने आप को (स्वयं को गर्भ रूप में) उत्पन्न करता है। क्योंकि गर्भ में (स्थित जीव की) संज्ञा आत्मा ही है। और आत्मा का अनादि होने के कारण जन्म नहीं होता है। इस प्रकार उत्पन्न हुआ इस प्रकार का जात (पहले से ही उत्पन्न) यह आत्मा अजात गर्भ को उत्पन्न नहीं करता है। अजात (शाश्वत) आत्मा ही निश्चितरूपेण अजात (जो उत्पन्न नहीं हुआ है, ऐसे) गर्भ को उत्पन्न करता है। और यह गर्भ ही बाद में (कालान्तर में) बाल, युवा व स्थविर (वृद्ध) अवस्थाओं को प्राप्त करता है, (इस प्रकार) वह आत्मा जिस-जिस अवस्था में प्राप्त होता है, उस उस अवस्था में उसे जात (उत्पन्न) माना जाता है, और जो उस अवस्था में उत्पन्न होते हुये की इसकी आगे आने वाली अवस्था होती है (वह अजात अवस्था होती है), इसलिए वह एक ही समय में जात व अजात दोनों प्रकार का होता है। जिसमें (जिस आत्मा में) ये दोनों संभव हैं यथा जातत्व व जनिष्यमाणत्व वह (ऐसा आत्मा) जात होकर भी उत्पन्न करता है। वह ही आगे आने वाली अवस्थाओं में अजात होकर भी आत्मा से आत्मा को (स्वयं से स्वयं को) उत्पन्न करता है। विद्यमान होते हुये का भी इसका (सतः अर्थात् विद्यमान का शाश्वत का) उस दूसरी अवस्था में जाने मात्र से ही जन्म होना कहा जाता है, जैसे (जिस प्रकार) शुक्र, शोणित व जीव की स्थिति होने पर भी (सताम् अर्थात् इन सबके विद्यमान होते हुओं के भी) इनके संयोग से पूर्व गर्भ की उत्पत्ति नहीं होती और वह (गर्भोत्पत्ति इन तीनों के) संयोग से होती है, जिस प्रकार उसी पुरुष के विद्यमान होते हुये के भी अपत्य प्राप्ति के पूर्व पितृत्व नहीं होता और वह अपत्योत्पत्ति के बाद प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार विद्यमान रहते हुये उसी गर्भ का उस-उस अवस्था में जातत्व और अजातत्व कहा जाता है।

इस सम्पूर्ण प्रसङ्ग से यह स्पष्ट हो जाता है कि शुक्र-शोणित के संयोग के समय ही जीव का प्रवेश होता

है।सम्भव है कि उस प्रविष्ट जीव की अभिव्यक्ति उस समय न होकर बाद में (40-48 दिन के बाद) होती हो, क्योंकि प्रारम्भ में चैतन्यस्वरूप की अवस्थिति के विना वह 40 दिन के बाद भी अभिव्यक्त कैसे होगा। वर्तमान में शरीर से सम्बन्धित एवं आयुर्वेदीय-चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक प्रकार के अनुसन्धान हो रहे हैं, जिनसे प्राचीन महर्षियों के द्वारा स्थापित सिद्धान्तों की पुष्टि भी हो रही है। अतः इस नवयुग में गर्भ में आत्मा के प्रवेश से सम्बन्धित अनुसन्धान आयुर्वेदीय दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिये। आयुर्वेद का यह भी मानना है कि यह आत्मा मनःसंयुक्त ही प्रवेश करता है। यह मन या सत्त्व औपपादुक (आत्मा का एवं स्वयं का दूसरे शरीर से सम्बन्ध कराने वाला) होता है। ये दोनों ही सूक्ष्मशरीर में संस्थित रहते हैं, अतः प्राचीनोक्त वचनों के अनुसार आत्मा,मन (सत्त्वमौपपादुकम्), लिङ्गशरीर, आतिवाहिक शरीर एवं सूक्ष्मशरीर से सम्बन्धित अनुसन्धान किया जाना अपेक्षित है।

सन्दर्भ :

1 चरकसंहिता-शारीरस्थान-2/31
2. चरकसंहिता-शारीरस्थान-2/31 चक्रपाणि
3. चरकसंहिता-शारीरस्थान-2/32
4. सांख्यकारिका - श्लोक 40
5. सांख्यकारिका - श्लोक 20
6. चरकसंहिता-शारीरस्थान- श्लोक 75, 76
7. चरकसंहिता-शारीरस्थान-3/13
8. चरकसंहिता-शारीरस्थान-3/13 चक्रपाणि
9. चरकसंहिता-शारीरस्थान-2/13
10. चरकसंहिता-शारीरस्थान-3/8